जम्मू और कश्मीर राज्य

बनाम

एम. एस. फारूकी और अन्य

दिनांक 17 मार्च, 1972

[एस.एम. सिकरी, मुख्य न्यायाधिपति, ए. एन. ग्रोवर, ए. एन. रे, डी. जी. पालेकर और एम. एच. बेग, न्यायाधिपति]

भारतीय संविधान, 1950 का अनुच्छेद 254, जैसा कि 1962 में जम्मू कश्मीर पर लागू होता है के दायरे में।

जम्मू और कश्मीर सरकारी कर्मचारी भ्रष्टाचार की रोकथाम (कमीशन) एक्ट, 1962 -यदि अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951 और उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रतिकूल है-तो इसके लिए परीक्षण।

प्रत्यर्थी, जो कि भारतीय पुलिस सेवा का एक सदस्य है, को जम्मू और कश्मीर कैडर धारित किया गया था। जम्मू और कश्मीर सरकारी कर्मचारी भ्रष्टाचार रोकथाम अधिनियम, 1962 के तहत गठित आयोग द्वारा प्रत्यर्थी के विरूद्ध आयोग को प्राप्त हुई शिकायत में जांच करने हेतु निर्देशित किया गया। प्रत्यर्थी द्वारा आयोग के क्षेत्राधिकार को चुनौती दी गई एवं उच्च न्यायालय द्वारा उसकी याचिका स्वीकार की जाकर अभिनिर्धारित किया गया कि किसी राज्य में सेवारत अखिल भारतीय सेवा

के सदस्य अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951 और उसके तहत बनाए गए नियमों द्वारा शासित होते हैं और कमीशन एक्ट उन पर लागू नहीं होता है।

इस न्यायालय को की गई अपील खारिज करते हुये,

अभिनिर्धारित: यह मानते हुये कि कमीशन एक्ट, इसकी मूल प्रकृति एवं स्वभाव में, सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्टाचार के संबंधी एक कानून है, जो अखिल भारतीय सेवा अधिनियम एवं अखिल भारतीय सेवा (अनुशासन और अपील) नियम, 1955 के प्रावधानों के प्रतिकूल है और चूंकि अनुच्छेद 254, कमीशन एक्ट (16 जुलाई, 1962) लागू होने के समय प्रभावी था, इसलिए कमीशन एक्ट को अखिल भारतीय सेवा अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों को रास्ता देना चाहिए। [एस. एम. सिकरी, 883 सी-डी, 887 बी-सी; 897 एफ]

(क) कमीशन एक्ट के लागू होने वक्त स्थिति यह थी कि संसद, संघ लोक सेवाओं, अखिल भारतीय सेवाओं एवं संघ लोक सेवा आयोग से संबंधित प्रथम सूची की मद संख्या 70 और अनुच्छेद 254, जैसा जम्मू और कश्मीर पर लागू होता है, के संबंध में कानून बना सकती थी, बशर्ते कि यदि किसी राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून का कोई प्रावधान संसद द्वारा बनाए गए कानून के किसी भी प्रावधान के प्रतिकूल है, तो संसद उसके द्वारा बनाये गये कानून को अभिनियमित करने के लिये

एवं राज्य विधानमंडल के कानून के प्रतिकूल प्रावधानों को शून्य करने हेतु सक्षम है, चाहे वह कानून राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाये गये कानून से पहले या बाद में पारित किया गया हो। इस प्रकार मतलब यह है कि यदि कमीशन एक्ट का कोई प्रावधान अनुशासन और अपील नियम, 1955 के किसी प्रावधान के प्रतिकूल है तो, जम्मू और कश्मीर सरकार द्वारा बनाया गया कानून उक्त नियमों के प्रावधानानुसार होना चाहिए। [884 एच-885 एफ]

ए. एस. कृष्णा बनाम मद्रास राज् [1957], S.C.R. 399; दीप चन्द बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, [1959] Supp. 2 S.C.R. 8 और प्रेम नाथ कौल बनाम जम्मू एवं कश्मीर राज्य [1959] Supp. 2 S.C.R. 270, यह स्पष्ट करते हैं कि -

(ख) प्रतिकूलता तब उत्पन्न होती है जब (i) संसद द्वारा अधिनियमित कानून की शर्तों की वास्तविक स्थिति एवं विवादित राज्य अधिनियम में विसंगति होती है, अथवा (ii) संसद का उद्देश्य किसी कानून को एक पूर्ण और विस्तृत संहिता के रूप में अधिनियमित करना हो, अथवा (iii) संसद द्वारा अधिनियमित कानून का उद्देश्य स्पष्ट रूप से सम्पूर्ण क्षेत्र पर लागू करने हेतु लक्षित हो। [887 एफ-एच]

चौ. टीका राम जी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, [1956] S.C.R. 393, ने स्पष्ट किया।

दीप चन्द बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, [1959] Supp. 2 S.C.R. 8; ने यह संदर्भित किया कि -

(ग) यह कहा जा सकता है कि संसद द्वारा अधिनियमित कानून का उद्देश्य सम्पूर्ण क्षेत्र को समेकित करना था, जहां असल मुद्दे की विषयवस्तु, उसे समझने के तरीकों एवं सुझाये गये नियमों की प्रकृति एवं बहुलता के कारण संसद ने एक योजना अथवा युक्ति अपनाई, जो उक्त विषय की विषयवस्तु पर किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा कोई अतिरिक्त नियम निर्धारित किये जाने पर अवरूद्ध एवं बाधित होती है। [888 D-F]

ओ'सुलिवान बनाम नौरलूंगा मीट लि. [1957] A.C. 1; अटॉर्नी जनरल, कनाडा बनाम अटॉर्नी-जनरल, ब्रिटिश कोलंबिया, [1930] A.C. 111; सुब्रहमण्यन चेटियार बनाम मुत्थुस्वामी गौण्डन, [1940] F.C.R. 188 एवं उखा कोल्हा बनाम मद्रास राज्य, A.I.R. 1963 S.C 1531, ने संदर्भित किया।

मेघ राज बनाम अल्लाह रखिया, [1947] F.C.R 77; प्रफुल्ल कुमार मुखर्जी बनाम बैंक ऑफ कॉमर्स, [1947] F.C.R. 28 एवं कलकत्ता गैस कंपनी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [1962] Supp. 3 S.C.R. 1; ने व्याख्या की।

वाइन्स ने, ऑस्ट्रेलिया में विधायी, कार्यकारी और न्यायिक शक्तियां, के चौथे संस्करण में पेज 101 पर संदर्भित किया।

(घ) अखिल भारतीय सेवा (अनुशासन और अपील) नियम, 1955 एवं जम्मू और कश्मीर सरकारी कर्मचारी भ्रष्टाचार की रोकथाम (कमीशन) अधिनियम, 1962 नामक दो वैधानिक कानूनों के प्रावधानों के अवलोकन से इस निष्कर्ष को अनदेखा करना असंभव है कि यह दोनों कानून एक साथ नहीं चल सकते हैं। विवादित अधिनियम में अतिरिक्त दण्डों हेतु प्रावधान दिये गये हैं, जो अनुशासन एवं अपील नियमों में नहीं दिये गये हैं और चूंकि जहां तक कमीशन एक्ट अनुशासनात्मक दण्ड के रूप में सज़ा देने से संबंधित है, यह अनुशासन एवं अपील नियमों के प्रतिकूल है। संसद द्वारा इस सम्पूर्ण विषय पर पकड़ करते हुये यह स्पष्ट संकेत दिया गया कि अखिल भारतीय सेवा के सदस्यों के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही सिर्फ अखिल भारतीय सेवा (अनुशासन और अपील) नियमों के तहत ही की जा सकती है। [897 B-D]

जहां तक कमीशन एक्ट का संबंध है, अभियोजन प्रारम्भ करने के उद्देश्यों हेतु आवश्यक प्रारंभिक जांच जम्मू और कश्मीर राज्य की विधिक क्षमता के दायरे में होनी चाहिए तथा अनुशासन एवं अपील नियमों के प्रतिकूल नहीं होनी चाहिए। परन्तु, चूंकि संभावित आपराधिक अभियोजन की जांच संबंधी प्रावधान, अनुशासनात्मक दण्ड देने संबंधी प्रावधानों से अटूट रूप से जुड़े हुये हैं, इसलिये पूरे अधिनियम को इस प्रकार से पढ़ा जाना चाहिए कि अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों को इसके दायरे से बाहर रखा जा सके। [897 D-F]

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णय: सी.ए क्रमांक 1572/1968

जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 130/1966 में दिनांक 31 अक्टूबर, 1966 को जारी निर्णय एवं आदेश के संबंध में अपील।

एम. के- रामामूर्ति, राम पंजवानी एवं आर. एन. सचथे, अपीलार्थी की ओर से।

जी. एल. सांघी, प्रत्यर्थियों की ओर से।

न्यायालय का निर्णय श्रीमान् सिकरी, मुख्य न्यायाधीश, द्वारा सुनाया गया -

यह अपील भारतीय पुलिस सेवा के एम. एस. फारूकी, याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी, द्वारा दायर रिट याचिका को जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय दिनां 31 अक्टूबर, 1966 के ज़रिये स्वीकार किये जाने एवं हमारे समक्ष अपीलार्थी, जम्मू और कश्मीर राज्य को प्रत्यर्थी के विरूद्ध जम्मू और कश्मीर सरकारी कर्मचारी भ्रष्टाचार की रोकथाम (कमीशन) अधिनियम, 1962 -आगे कमीशन एक्ट के तहत संबोधित- के तहत कार्यवाही करने से रोके जाने पर, उच्च न्यायालय द्वारा जारी प्रमाण पत्र के जरिये की गई है। उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि राज्य में सेवारत अखिल भारतीय सेवा के सदस्य अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951 एवं उसके तहत बनाये गये नियमों से शासित होते हैं एवं कमीशन

एक्ट उन पर लागू नहीं होता। उच्च न्यायालय ने आगे यह भी अभिनिर्धारित किया कि कमीशन एक्ट संविधान के अनुच्छेद 14 से इस प्रकार प्रभावित होता है कि "राज्य में पदस्थ अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों एवं उसी सेवा के अन्यत्र पदस्थ सदस्यों के मध्य स्पष्ट रूप से इतना भेदभाव है कि अन्यत्र पदस्थ सदस्य के विरूद्ध भ्रष्टाचार के कृत्यों के लिये कार्यवाही केन्द्रीय अधिनियम एवं उसके तहत बनाये गये नियमों के आधार पर होगी जबकि, राज्य में पदस्थ सदस्य के विरूद्ध भ्रष्टाचार के उन्हीं कृत्यों के लिये कार्यवाही कमीशन एक्ट के तहत होगी, जिसके प्रावधान केन्द्रीय अधिनियम एवं उसके तहत बनाये गये नियमों की तुलना में अधिक कठोर हैं।"

हम संक्षेप में उन प्रासंगिक तथ्यों का उल्लेख कर सकते हैं, जिनके कारण रिट याचिक दायर करने की आवश्यकता हुई। हमारे समक्ष प्रत्यर्थी, एम. एस. फारूकी, आगे याचिकाकर्ता के रूप में संबोधित, भारतीय पुलिस सेवा के एक सदस्य हैं जो अखिल भारतीय सेवा में आती है। उन्हें जम्मू और कश्मीर कैडर में भारित किया गया। दिनांक 12 मार्च, 1964 को कमीशन एक्ट के तहत बनाये गये कमीशन को एक गुमनाम शिकायत प्राप्त हुई। दिनांक 20 मार्च, 1964 को कमीशन द्वारा उप महानिरीक्षक पुलिस से रिपोर्ट मांगी गई। उप महानिरीक्षक पुलिस (भ्रष्टाचार रोधी संगठन) द्वारा आयोग के क्षेत्राधिकार पर सवाल उठाया गया। जिस पर

कमीशन द्वारा यह माना गया कि कमीशन एक्ट अखिल भारतीय सेवाओं के जम्मू और कश्मीर कैडर के राजकीय कर्मचारियों पर पूरी तरह से लागू होता है। इस प्रकार जांच एजेंसी द्वारा उठाई गई आपत्ति को खारिज कर दिया गया। जांच एजेंसी को प्रकरण में अनुसंधान जारी रखते हुये रिपोर्ट प्रस्तुत करने हेतु निर्देशित किया गया। इसके बाद याचिकाकर्ता ने आयोग के क्षेत्राधिकार को चुनौती देते हुये उच्च न्यायालय में रिट याचिक दायर की। जैसा कि पूर्व में कहा गया है, उच्च न्यायालय ने याचिका को स्वीकार कर लिया परन्तु बाद में फिटनेस प्रमाण पत्र जारी कर दिया और अब जम्मू और कश्मीर राज्य की ओर से दायल अपील हमारे सामने है।

राज्य के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि -

(1) कमीशन एक्ट मूल रूप में जम्मू और कश्मीर राज्य के सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्टाचार से संबंधित कानून है और केवल संयोग से अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों से संबंधित है, इस प्रकार से यह पूर्णतः वैध है

(2) यदि ऐसा कोई कानून वैध है, तो यह एक्ट भेदभावपूर्ण नहीं है क्योंकि जम्मू और कश्मीर सरकार के सभी कर्मचारियों के साथ एक समान रूप से व्यवहार किया जाता है और यही प्रक्रिया भ्रष्टाचार के आरोपों में जांच के लिये भी अपनाई गई।

(3) क्षेत्र के आधार पर वैध रूप से वर्गीकरण किया गया है, एवं

(4) किसी भी स्थिति में, कमीशन एक्ट के तहत प्रक्रिया, अखिल भारतीय सेवा अधिनियम एवं इसके तहत बनाये गये नियमों की प्रक्रिया से ज्यादा पक्षपातपूर्ण अथवा हानिकारक नहीं है।

विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया प्रथम बिन्दु जम्मू और कश्मीर में सेवारत भारतीय पुलिस सेवा के सदस्यों पर कमीशन एक्ट लागू होने की वास्तविक आपत्ति को पूरा नहीं करता है। जो आपत्ति यह है कि, यह मानते हुये कि कमीशन एक्ट मूल रूप में सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्टाचार से संबंधित कानून है, जो कि अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951, एवं अखिल भारतीय सेवा (अनुशासन और अपील) नियम, 1955-आगे अनुशासन एवं अपील नियम के रूप में संबोधित, के प्रावधानों के प्रतिकूल है और इसे आवश्यक रूप से वैधानिक प्रावधानों को रास्ता देना चाहिए।

हमें ऐसा लगता है कि याचिकाकर्ता की ओर से उठाई गई आपत्ति में बल है एवं इस दृष्टिकोण से विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाये गये चार बिन्दुओं में निर्णय किया जाना आवश्यक नहीं है।

हमें यहां भारत का संविधान, जैसा प्रासंगिक समय पर जम्मू और कश्मीर राज्य पर लागू होता है, से मतलब है। भारत के संविधान का अनुच्छेद 370, अन्य बातों के साथ-साथ, यह प्रावधान करता है कि "राज्य (जम्मू और कश्मीर) के लिये कानून बनाने की संसद की शक्तियां संघ सूची और समवर्ती सूची के उन मामलों तक सीमित होंगी, जो राज्य सरकार के

परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा भारत अधिराज्य में राज्य के विलय को नियंत्रित करने वाले विलय के दस्तावेज में निर्दिष्ट मामलों के अनुरूप घोषित किये जाते हैं, जिसके आधार पर अधिराज्य की विधायिका राज्य के लिये कानून बना सकती है, और (पप) उक्त सूचियों में ऐसे अन्य मामले, राज्य सरकार सहमति के साथ राष्ट्रपति जैसे कि आदेश द्वारा निर्दिष्ट करें।"

अनुच्छेद 370 की धारा (1) में प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुये राष्ट्रपति ने जम्मू और कश्मीर की राज्य सरकार की सहमति से संविधान आदेश, 1954 जारी किया। इस मामले में हम इस स्थिति के बारे में चिंतित हैं कि यह आदेश दिनांक 16 जुलाई, 1962 को मौजूद था, जब कमीशन एक्ट को सदर-ए-रियासत की मंजूरी मिली थी। स्थिति यह थी कि संसद प्रथम सूची की प्रविष्टि संख्या 70 पर कानून बना सकती थी, जिसमें "संघ लोक सेवायें, अखिल भारतीय सेवायें, संघ लोक सेवा आयोग" लिखा हुआ है।

संविधान का अनुच्छेद 246, जैसा कि तब जम्मू और कश्मीर पर लागू था, तब यह कहता था कि -

"246(1), संसद के पास सातवीं अनुसूची में सूची 1 पर किसी भी वस्तु के संबंध में कानून बनाने की

अनन्य शक्ति है (इस संविधान में "संघ सूची" से संबोधित)।"

अनुच्छेद 248 एवं 249 को जम्मू और कश्मीर राज्य पर लागू नहीं किया गया था और इसलिए सभी अवशिष्ट शक्तियां जम्मू और कश्मीर राज्य के पास रही। प्रथम सूची की अवशिष्ट शक्तियों से संबंधित प्रविष्टि 97 को भी हटा दिया गया।

अनुच्छेद 254, जैसा कि प्रासंगिक समय पर जम्मू और कश्मीर पर लागू होता है, के अनुसार:

> "254, यदि किसी राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून का कोई प्रावधान संसद द्वारा बनाए गए कानून के किसी भी प्रावधान के प्रतिकूल है, तो संसद उसके द्वारा बनाये गये कानून को अभिनियमित करने के लिये एवं राज्य विधानमंडल के कानून के प्रतिकूल प्रावधानों को शून्य करने हेतु सक्षम है, चाहे वह कानून राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाये गये कानून से पहले या बाद में पारित किया गया हो"

प्रासंगिक समय पर समवर्ती सूची नहीं थी। सर्वप्रथम समवर्ती सूची में कुछ प्रविष्टियां आदेश संख्या सीओ 66/1963 दिनांक 25 सितंबर, 1963 के द्वारा किया जाता दर्शित होता है।

इस संवैधानिक योजना से यह दर्शित होता है कि यदि कमीशन एक्ट का कोई प्रावधान, अनुशासन एवं अपील नियम, 1955 के किसी प्रावधान के प्रतिकूल है, तो जम्मू और कश्मीर राज्य द्वारा बनाया गया कानून उक्त नियमों के प्रावधानानुसार होना चाहिए।

संविधान का अनुच्छेद 254, जैसा कि उपर लागू किया गया है, ऑस्ट्रेलियन संविधान की धारा 109 के समान है, जो यह प्रदान करता है कि "जब राज्य का कोई कानून राष्ट्रमंडल के किसी कानून के साथ असंगत हो, तो राष्ट्रमंडल द्वारा बनाया गया कानून ही प्रबल रहेगा एवं राज्य का कानून असंगतता की हद तक अप्रभावी रहेगा।"

राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने अनुच्छेद 254, जैसा कि भारतीय संविधान में मौजूद है, की व्याख्या करते हुये इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का हवाला दिया।

ए. एस. कृष्णा बनाम मद्रास राज्य में, भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 107, जो कि संविधान की धारा 254(1) के समान है, वेंकटरामा अय्यर, न्यायाधिपति, ने कहा कि:

"इस धारा को लागू करने के लिये दो शर्तें पूरी होनी चाहिए, (1) प्रांतीय कानून एवं केन्द्रीय विधानमंडल दोनों के प्रावधान समवर्ती सूची में सूचीबद्ध किसी मामले के होने चाहिए, (2) वे एक-दूसरे से प्रतिकूल होने चाहिए। यह दोनों आवश्यक शर्तें पूरी होने पर प्रांतीय कानून, प्रतिकूलता की हद तक, शून्य हो जायेगा।"

दीप चन्द बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में, सुब्बा राव, न्यायाधिपति द्वारा भी अनुच्छेद 254 की धारा (2) को इसी तरीके से पढ़ा गया।

प्रेम नाथ कौल बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य में भी गजेन्द्रगडकर, न्यायाधिपति द्वारा यह कहा गया कि:

"यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 254(1) के अनुप्रयोग के लिये आवश्यक शर्त यह है कि मौजूदा कानून समवर्ती सूची में सूचीबद्ध मामलों में से किसी एक के संबंध में होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद तब तक लागू नहीं होगा, जब तक विनिर्दिष्ट मामलों के संबंध में यह नहीं दिखाया जाये कि मौजूदा कानून एवं बाद में बनाये गये कानून के

प्रावधानों में प्रतिकूलता है और, जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, सातवीं अनुसूची जिसमें तीन विधायी सूचियां निहित हैं, तब राज्यों तक विस्तारित नहीं की गई थी और इसलिए यह निर्धारित करना असंभव है कि पूर्व कानून के अधीन रहा विषय समवर्ती सूची में सूचीबद्ध विषयों में से एक है अथवा नहीं। यही कारण है कि अपीलार्थी द्वारा अनुच्छेद 254 का आह्वान नहीं किया जा सकता है।"

अनुच्छेद 254, जैसा कि जम्मू और कश्मीर राज्य पर लागू होता है, यह निर्णय जारी करते समय भारतीय संविधान में दिये गये रूप में ही था। यह न्यायालय तब अनुच्छेद 254 के उस रूप पर सुनवाई नहीं कर रहा था, जिस पर आज हम कर रहे हैं।

हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि इस न्यायालय ने चौधरी टीका रामजी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में निम्नलिखित शब्दों में अनुच्छेद 254(1) की व्याख्या करते हुये यह प्रश्न खुला छोड़ दिया कि:

"हमारा मतलब यहां संसद एवं राज्य दोनों के द्वारा समवर्ती सूची में सूचीबद्ध किसी एक विषय पर कार्य

करने से उत्पन्न हुई प्रतिकूलता से है, जो सूची III की प्रविष्टि 33 में निहित खाद्य सामग्री का विषय है, और चूंकि हमें यहां अनुच्छेद 254(1) "संसद द्वारा बनाया गया एक कानून, जिसे संसद लागू करने में सक्षम है" के संबंध में अनुच्छेद 254(1) के सटीक दायरे एवं प्रभाव को लेकर उठाये गये विवाद कि क्या संसद की विधायी शक्ति का संबंध सूची प्ए सूची III एवं अनुच्छेद 248 के तहत संसद में निहित विधायिका की अवशिष्ट शक्ति से है अथवा यह सिर्फ समवर्ती सूची में सूचीबद्ध विषयों तक ही सीमित है। (Vide A.I.R. 1942 Cal. 587 contra, per सुलैमान, न्यायाधिपति, in 1940 F.C.R. 188 at page 226)"

हमें ऐसा लगता है कि उपरोक्त मामले यहां लागू नहीं होते हैं क्योंकि अनुच्छेद 254, जैसा कि जम्मू और कश्मीर में लागू है, कि भाषा अनुच्छेद 254 से अलग है।

अनुच्छेद 254 की शब्दावली के संबंध में हमें ऐसा लगता है कि चूंकि अनुच्छेद 254 कमीशन एक्ट लागू होने के समय प्रभावी था, अनुच्छेद की स्पष्ट शब्दावली से बचा नहीं जा सकता। यह स्पष्ट शब्दों में

कहता है कि यदि संसद और राज्य द्वारा बनाये गये किसी कानून में कोई प्रतिकूलता है तो संसद द्वारा निर्मित कानून के प्रावधान लागू होंगे।

इसलिए, अब यही प्रश्न निर्धारित किया जाना है कि अनुशासन एवं अपील नियमों एवं कमीशन एक्ट के मध्य कोई प्रतिकूलता है अथवा नहीं। हम यह कह सकते हैं कि हमें अनुच्छेद 254, जैसा कि यह भारतीय संविधान में मौजूद है एवं जिसकी व्याख्या उपरोक्त संदर्भित निर्णयों द्वारा की गई है, को दिये गये अर्थ से मतलब नहीं है।

चौधरी टीका रामजी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में इस न्यायालय ने प्रतिकूलता के प्रश्न की जांच की थी। न्यायालय ने विभिन्न प्राधिकरणों का हवाला देते हुये निष्कर्षित किया कि या तो संसद द्वारा अधिनियमित कानून की वास्तविक शर्ताेंं में विसंगति होनी चाहिए और संसद द्वारा अधिनियमित कानून का उद्देश्य एक पूर्ण और विस्तृत संहिता के रूप में होना चाहिए, दूसरे शब्दों में, स्पष्ट रूप से या निहित रूप से पूरे विषय अथवा क्षेत्र को शामिल करने का उद्देश्य रखता हो। विभिन्न प्राधिकारियों द्वारा कहीं प्रतिकूलता अथवा विसंगति मौजूद है अथवा नहीं, यह पता लगाने के लिये कई परीक्षण सुझाये गये हैं। न्यायाधिपति श्री भगवती ने निकोलस-ऑस्ट्रेलियन संविधान, द्वितीय संस्करण, पेज 303 को संदर्भित किया-जो विसंगति और प्रतिकूलता के परीक्षण के निम्न तीन परीक्षण सुझाता है:-

(1) प्रतिस्पर्धी कानूनों की वास्तविक शर्तों में विसंगति होनी चाहिए।

(2) हालांकि उनके मध्य सीधे तौर पर विवाद नहीं हो परन्तु, राज्य का कोई कानून निष्क्रिय हो सकता है यदि कॉमनवेल्थ कानून अथवा कॉमनवेल्थ न्यायालय द्वारा पारित अंतिम निर्णय का उद्देश्य एक पूर्ण विस्तृत संहिता होना हो।

(3) कोई मंशा नहीं होने पर भी विवाद उत्पन्न हो सकता है जब राज्य एवं राष्ट्रमंडल दोनों एक ही विषय पर अपनी शक्तियों का प्रयोग करना चाहें।

दीप चन्द बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में न्यायाधिपति सुब्बा राव द्वारा न्यायालय की ओर से प्रतिकूलता के प्रश्न पर यह टिप्पणी की गई कि -

> "दो कानूनों के मध्य निम्नलिखित तीन सिद्धांतों के आधार पर प्रतिकूलता का निश्चय किया जा सकता है -
>
> (1) क्या दोनों प्रावधानों के बीच सीधा विवाद है,
>
> (2) क्या संसद विषय वस्तु के संबंध में एक विस्तृत कानून निर्धारित कर राज्य विधानमंडल के कानून को प्रतिस्थापित करना चाहती थी, एवं

(3) क्या संसद एवं राज्य द्वारा बनाया गया कानून एक ही क्षेत्र के संबंध में है।"

हम स्टॉक मोटर प्लॉठ लि. बनाम फॉर्सिथ में न्यायाधिपति इवाट की टिप्पणियों को संदर्भित कर सकते हैं, जो टीका रामजी के मामले में उद्धरित की गई थी:

"इस (पूर्ण क्षेत्र पर पकड़ संबंधी परीक्षण) तथ्य को व्यक्त करना एक रूढ़ोक्ति से कम नहीं है कि, असल मुद्दे की विषयवस्तु, उसे समझने के तरीकों एवं सुझाये गये नियमों की प्रकृति एवं बहुलता के कारण संघीय प्राधिकरण ने एक योजना अथवा युक्ति अपनाई, जो उक्त विषय की विषयवस्तु पर किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा कोई अतिरिक्त नियम सुझाये जाने अथवा दूसरे शब्दों में राज्य प्राधिकरण द्वारा विषय में आमूलचूल परिवर्तन करने पर अवरूद्ध एवं बाधित होती है"

ऑस्ट्रेलिया में यह अभिनिर्धारित किया गया कि ऑस्ट्रेलियन संविधान की धारा 109 का अनुप्रयोग उन मामलों तक सीमित नहीं है जहां, दोनों प्रावधानों के समूह एक ही विषय वस्तु से संबंधित है। वाइन्स ने उनकी "ऑस्ट्रेलिया में विधायी, कार्यकारी और न्यायिक शक्तियां के चौथे संस्करण में ऑस्ट्रेलिया में लागू सामान्य सिद्धांतों का पेज 101 पर उल्लेख किया है। इनमें से कुछ सिद्धांतों को निर्धारित किया जा सकता है कि:

> "1. पहले यह पता करना आवश्यक है कि विसंगति का प्रश्न उठता है अथवा नहीं। इस प्रकार यदि राष्ट्रमंडल के पास विचाराधीन कानून पारित की शक्ति नहीं है अथवा कानून अन्यथा अमान्य हो, मामला समाप्त हो जायेगा एवं धारा 109 प्रकाश में नहीं आयेगी। इसी प्रकार धारा 109 वहां आवश्यक नहीं होगी जहां राज्य का कानून अन्य आधारों पर अमान्य है।.....
>
> 3. इससे फर्क नहीं पड़ता कि कौनसा अधिनियम समय के हिसाब से पहला है।.....

7. वहां जहां सीधा विवाद अथवा भेदभाव नहीं है, वहां भी विसंगति हो सकती है, यदि राज्य किसी ऐसे मामले में शासन, आचरण, कार्य करने का प्रयास करता है, जिसमें किसी विशेष विषय पर शासन हेतु राष्ट्रमंडल द्वारा पहले ही कानून पूर्ण एवं विस्तृत संहिता लागू करने के उद्देश्य से बना दिया गया हो। प्रत्येक स्थिति में प्रश्न यही है कि राष्ट्रमंडल की संसद का उद्देश्य क्या है? क्या उसका इरादा निश्चित विषय पर पूरे कानून को लागू करने का है? यदि ऐसा हो तो उस विषय को राज्य के नियंत्रण से वापस ले लिया जाता है परन्तु, जैसा कि हमने 44 घंटे वाले प्रकरण में न्यायाधिपति डिक्सन के तर्क से देखा है, इसे केवल उन राज्य विधानमंडलों से वापस ले लिया गया था, जो इस कानून को उस चरित्र में शासित करने का प्रयास करता है, जिसके आधार पर यह राष्ट्रमंडल कानून द्वारा विनियमित है, ना कि किसी एक अथवा सभी राज्य विधानमंडलों से जो इसे प्रभावित कर सकते हैं या इससे संबंधित हैं।.....

8. धारा 109 के संचालन हेतु यह आवश्यक नहीं है कि समग्र रूप से एक माने जाने वाले दो अधिनियम उसी विषय विशेष पर अथवा उसके संबंध में होने चाहिए। लेकिन जहां राष्ट्रमंडल के किसी विषय पर अनन्य रूप से कार्य करने के उद्देश्य एवं राज्य कानून के आचरण से संबंधित विषय, जो संभवतः उसी विषय का एक हिस्सा है, के मध्य विसंगति स्थापित होते देखी गई, प्रश्न यह है कि क्या राज्य कानून राष्ट्रमंडल कानून द्वारा अनन्य रूप से शासित विषय के संबंध में नये तत्व का निर्माण कर आचरण करता है। यह एक सवाल है जिसका निर्णय प्रत्येक मामले की परिस्थितियों में किया जाना चाहिए।"

प्रिवी काउंसिल की न्यायिक समिति ने, ओ सुलिवान बनाम नोआरलुंगा मीट लि. में, न्यायाधिपति डिक्सन के एक पक्षीय मैक्लीन निर्णय से निम्नलिखित पंक्तियों को मंजूरी दी:

"विसंगति महज अनुपालना हेतु ग्रहणशील दो कानूनों के सहअस्तित्व में होने से नहीं होती है। यह

सर्वोच्च विधायिका के किसी आचरण अथवा मुद्दे, जिस पर उसका ध्यान आकर्षित किया गया है, को शासित करने के लिये क्या कानून होना चाहिए एवं उसकी अनन्यता, पूर्णता एवं विस्तृतता को व्यक्त करने के उद्देश्य पर निर्भर करती है। जब एक संघीय कानून ऐसे उद्देश्य का खुलासा करता है तो ऐसे ही आचरण एवं विषय को शासित करने वाला राज्य इसके प्रतिकूल होगा।"

कनाडा में कुछ मामलों में यह प्रश्न उठ चुका है एवं वह मामले प्रासंगिक हैं, क्योंकि कहते हैं कि कनाडा में सर्वोच्चता "ट्रेंचिंग" सिद्धांत, जो फिश कैनरीज़ प्रकरण-अटॉर्नी जनरल, कनाडा बनाम अटॉर्नी जनरल, ब्रिटिश कोलंबिया में निर्धारित प्रथम चार प्रस्तावों के साथ जुड़ी हुई है एवं चौथा प्रस्ताव इन शब्दों में था कि:

"एक ऐसा क्षेत्र हो सकता है जहां प्रांतीय एवं अधिराज्य की विधायिका अधिव्याप्त हो सकती है, जिस स्थिति में क्षेत्र स्पष्ट होने पर कोई भी विधायिका अपनी शक्तियों से परे नहीं होगी परन्तु, यदि क्षेत्र स्पष्ट नहीं हो तो

एवं दोनों विधायिका आमने-सामने हों तो अधिराज्य कानून प्रबल रहेगा।"[देखें G.T.R. v. A.G. Can.([2])]*.

न्यायाधिपति सुलैमान द्वारा इस प्रश्न का परीक्षण सुब्रहमण्यन चेट्टियार बनाम मुत्थुस्वामी गौण्डन में किया गया। उन्होंने कहा कि:

"मुझे ऐसा लगता है कि कैनेडियन मामलों में उनके न्यायाधिपति द्वारा निर्धारित किये गये विवेचन के सिद्धांतों को सिर्फ यह कहकर ताक में नहीं रखा जा सकता कि वे एक अलग संविधान से संबंधित हैं। वे सिद्धांत ना सिर्फ महानतम प्रभाव के हैं बल्कि भारतीय संविधान की विवेचना में हमारे लिए मार्गदर्शक की तरह हैं। बेशक, हम भारतीय कानून की किसी धारा की भाषा का विवेचन कैनेडियन संविधान के अनुरू। उसी धारा के प्रकाश में नहीं कर सकते। उससे परहेज करना होगा परन्तु, विवेचन के जो सिद्धांत स्थापित किये गये हैं उनको अनदेखा नहीं किया जा सकता। उसी समय पर उन सिद्धांतों का एक ही भाग द्योतित करना एवं अन्य भाग को छोड़ देना खतरनाक होगा।

आंशिक अनुप्रयोग उस उद्देश्य को विफल कर सकता है जिसके लिये कानून का शासन अपनाया गया। आकस्मिक अतिक्रमण एवं खुले हुये क्षेत्र के दोनों सिद्धांतों में निकट संबंध हैं। मैं आगे बढ़ते हुये यह भी कहूंगा कि वे अविभाज्य रूप से जुड़े हुये हैं। हम प्रांतों के पक्ष में आकस्मिक अतिक्रमण के सिद्धांत को द्योतित करते हुये यदि खुले क्षेत्र के सिद्धांत को, जो कि केन्द्र के पक्ष में है, को द्योतित करने से इनकार नहीं कर सकते। इन दोनों को साथ-साथ ही चलना चाहिए। प्रांतीय विधानमंडलों को एक अप्रत्यक्ष रूप में भी अनन्य संघीय क्षेत्र पर अतिक्रमण की अनुमति देना, जहां एक केन्द्रीय कानून द्वारा पहले ही क्षेत्र कब्जा किया हुआ है, प्रांतीय विधानमंडलों को संघीय सूची से संबंधित मामलों से संबद्ध केन्द्रीय कानून को निष्क्रिय करने की खुली छूट देना होगा। इस तरह की पूर्ण स्वतंत्रता की परिकल्पना मुश्किल ही की गई होगी। इस अधिनियम की धारा 100 में प्रांतीय विधानमंडल के प्राधिकारियों को सूची । के विषयों के संबध में कानून पारित करने से पूर्णतः रोकने की योजना है। यदि इस प्रकार के बहिष्कार को कठोरता से लागू के परिणामस्वरूप प्रांतीय विधानमंडलों को कुछ कठिनाइयां

महसूस होती हैं, तो हमें "इसके संबंध में आकस्मिक अतिक्रमण की अनुज्ञेयता का कैनेडियन सिद्धांत एवं उसी समय पर हमें आवश्यक रूप से अन्य संबद्ध सिद्धांत कि ऐसा कोई अतिक्रमण तभी अनुज्ञेय होगा जब क्षेत्र वास्तव में खाली हो, के सिद्धांत को द्योतित करना होगा। केवल इसी तरह से केन्द्र एवं प्रांतों के मध्य वास्तविक संघर्ष से बचा जा सकता है, जो मुझे लगता है कि हमें अवश्य करना चाहिए। यह इस कानून की धारा 107(1) में रहे स्पष्ट अन्तर की भी व्याख्या करेगा, जो अन्तर धारा 100 के प्रावधानों द्वारा कम किया जा रहा है।"

न्यायाधिपति वरदचरियार ने यह बिन्दु खुला छोड़ दिया कि क्या विवादित कानून के प्रावधान भी जहां तक वे परक्राम्य लिखत अधिनियम के प्रावधानों के प्रतिकूल हैं, संविधान अधिनियम की धारा 107 के तहत शून्य हो जायेंगे, उन्होंने कहा कि:

"इस विवाद की वैधता धारा 107 की उप धारा (1) के प्रारंभिक भाग में होने वाली अभिव्यक्ति "संघीय कानून" को

द्योतित करने पर निर्भर करती है। यह स्वीकार किया जा सकता है कि शब्द "जो संघीय विधानमंडल अधिनियमित करने के लिये सक्षम हैं' पहली सूची को भी संदर्भित कर सकते हैं और बाद में आने वाले समवर्ती विधायी सूची का उल्लेख करने वाले शब्दों के लिये योग्य होना आवश्यक नहीं है, क्योंकि अगर बाद में आने वाले शब्दों का उद्देश्य उप धारा के शुरूआती शब्दों का समर्थन करना भी हो तो पूर्ववर्ती भाग में इन शब्दों का "जो संघीय विधानमंडल अधिनियमित करने के लिये सक्षम हैं' प्रयोग आवश्यक नहीं होता।

उन्होंने आगे धारा 107 के प्रचालन में एक संभव विसंगति को भी देखा अर्थात्, "कि जहां प्रांतीय कानून समवर्ती सूची में उल्लिखित विषयों के संबंध में "मौजूदा भारतीय कानून" की अवहेलना नहीं कर सकता सिवाय इसके जब गर्वनर जनरल द्वारा सहमति दी गई हो जबकि, सूची II में उल्लिखित विषयों संबंधी कानून बिना किसी ऐसे बचाव के केन्द्रीय विधानमंडल के पूर्व मौजूदा कानूनों को भी

अधिभावी कर सकता है, यदि वे सूची । में उल्लेखित विषयों से संबंधित हों।"

राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रिवी काउंसिल के निर्णय मेघराज बनाम अल्लाह राखिया के हवाला देते हुये अपने प्रस्ताव के समर्थन में कहा कि यदि विवादित कानून अखिल भारतीय सेवाओं के संबंध में कानून नहीं है बल्कि लोक अधिकारियों के भ्रष्टाचार के संबंध में एक कानून है, यह राज्य विधानमंडल के क्षेत्राधिकार के तहत है एवं प्रतिकूलता का कोई प्रश्न नहीं उठता है। वह विशेष रूप से निम्नलिखित टिप्पणियों का हवाला देते हुये कहते हैं कि:

"इस प्रकार दोनों पक्षों ने धारा 107 का सही अर्थ निकाला है चूंकि, किसी मामले में ऐसा कोई अनुप्रयोग नहीं देखा गया है, जहां प्रांत यह दिखा सके कि यह पूरी तरह से अपनी शक्तियों के भीतर काम कर रहा था, प्रांतीय सूची के अधीन और समवर्ती सूची द्वारा प्रदत्त किसी शक्ति पर निर्भर नहीं था।"

"साथ ही यह कहता है कि उनके न्यायाधिपति के निर्णय में यह अभिनिर्धारित करने के लिये पर्याप्त आधार नहीं हैं कि विवादित अधिनियम या इसका कोई भी हिस्सा अमान्य था। यह पूर्णतः प्रांत की सूची II की प्रविष्टि 2 एवं 21 में दी गई शक्तियों के अधीन सूची III समवर्ती सूची से किसी शक्ति को उद्धृत किये बगैर था। तदनुसार, संविधान अधिनियम की धारा 107 के तहत प्रतिकूलता का प्रश्न नहीं उठता है एवं यहां उस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।"

लेकिन अगर तथ्यों की जांच की जाए तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि यह टिप्पणियां अपीलार्थी की सहायता नहीं करती हैं। जिस अधिनियम का विरोध किया गया था, वह पंजाब बंधक भूमि बहाली अधिनियम, 1938 था और यह तर्क दिया गया था कि विवादित अधिनियम के प्रावधान कुछ मौजूदा भारतीय कानूनों अर्थात् भारतीय अनुबंध अधिनियम एवं दीवानी प्रक्रिया संहिता के प्रतिकूल थे, जो भारत सरकार अधिनियम 1935 की सूची III की प्रविष्टि 8 व 10 के अंतर्गत आती है। प्रविष्टि 8 "कृषि भूमि के अतिरिक्त संपत्ति का हस्तांतरण, विलेख और दस्तावेजों के पंजीयन" एवं

प्रविष्टि 10 "अनुबंधों, जिनमें साझेदारी, एजेंसी, वाहन के अनुबंध और अन्य विशेष तरह के अनुबंधों से संबंधित है, लेकिन कृषि भूमि संबंधी अनुबंध शामिल नहीं हैं।" प्रिवी काउंसिल इस निष्कर्ष पर पहुंची थी कि विवादित अधिनियम सूची II की प्रविष्टि 2 एवं 21 के अंतर्गत था। उनके न्यायाधिपति ने कहा कि :

> "यदि, जैसा कि उनके न्यायाधिपति सोचते हैं, विवादित अधिनियम कृषि भूमि तक सीमित है, सूची III की प्रविष्टियां 7, 8 व 10 स्थिति को प्रभावित नहीं करती हैं, चूंकि कृषि भूमि को इन प्रविष्टियों से बाहर रखा गया है। लेकिन किसी भी मामले में, यह कानून वसीयतों अथवा सम्पत्ति के हस्तांतरण के संबंध में बिल्कुल भी कार्य नहीं करता है, यह रेहन संबंधी मामलों में निश्चित रूप से कार्य करता है, लेकिन जैसा उनके न्यायाधिपति द्वारा पहले ही कहा जा चुका है, रेहन, हालांकि संविधान अधिनियम में स्पष्ट रूप से उल्लिखित नहीं है परन्तु उचित रूप से वर्गीकरण अनुबंधों के शीर्ष के तहत नहीं होकर "भूमि की प्रविष्टि हेतु सहायक विशेष समझौते के रूप में होना चाहिए।"

इस मामले में यह स्पष्ट था कि सूची II में उल्लेखित प्रविष्टियों के कानून एवं सूची III में उल्लेखित प्रविष्टियों के कानूनों के मध्य कोई टकराव नहीं था, टकराव यदि था तो मौजूदा भारतीय कानूनों के मध्य था। प्रिवी काउंसिल को उस मामले में कार्य नहीं करना पड़ा था, जिस पर हम कर रहे हैं अर्थात् जब राज्य का कोई वैध कानून सूची I के तहत संसद के किसी सक्षम विधान के साथ टकराव में आ जाता है।"

इसी तरह, प्रफुल्ल कुमार मुखर्जी बनाम बैंक ऑफ कॉमर्स में कथित रूप से बंगाल ऋणदाता अधिनियम, 1940 एवं एक मौजूदा भारतीय कानून, परक्राम्य लिखत अधिनियम के मध्य विवाद था। प्रिवी काउंसिल के समक्ष यह आग्रह किया गया था कि "यदि विवादित अधिनियम किसी संघीय कानून के साथ अधिकृत क्षेत्र के बाहर संघर्ष करता है-तो संविधान अधिनियम की धारा 107 में वर्णित शब्दों के अर्थ में-यह हो सकता है कि इसके प्रावधान अप्रभावी होंगे। किसी ऐसे विवाद के संबंध में प्रश्न के तीन उत्तर यह हैं कि: (i) विवादित अधिनियम एवं परक्राम्य लिखत अधिनियम के मध्य कोई विसंगति अथवा संघर्ष नहीं है, (ii) अगर कोई विवाद हो भी तो, संविधान अधिनियम की धारा 107 के अर्थ में परक्राम्य लिखित अधिनियम एक संघीय कानून नहीं है, (iii) अगर कोई विवाद है एवं परक्राम्य लिखत अधिनियम एक संघीय कानून है तो संघर्ष संघीय कानून के उस हिस्से के साथ है, जो अनुबंध के क्षेत्र में है एवं समवर्ती सूची, सूची

III में प्रदत्त शक्तियों के तहत है एवं यह विवाद संविधान अधिनियम की धारा 107 की उप धारा 2 के प्रावधानों से ठीक किया जा सकता है, क्योंकि यह एक ऐसा मामला है जहां, अधिनियम को गवर्नर-जनरल द्वारा विचार करने के लिये आरक्षित रखा गया था, इसलिये प्रांत में प्रांतीय अधिनियम प्रबल होना चाहिए।"

प्रिवी काउंसिल द्वारा तीन सवाल पूछे गये। (1) क्या प्रश्नगत अधिनियम मूल रूप एवं सार में धन उधार देने के संबंध में है? (2) यदि यह इस संबंध में है तो क्या यह वैध है यद्यपि, इसका कुछ हिस्सा संयोगवश संघीय विधानमंडल हेतु आरक्षित मामलों में से एक है? (3) एक बार जब यह तय हो जाए कि मूल रूप एवं सार में यह धन उधार देने से संबंधित है, किसी भौतिक मामले में किस हद तक संघीय कानून पर कब्जा किया गया है? उन्होंने पहले सवाल का जवाब हां में दिया। दूसरे सवाल पर विचार करते समय प्रिवी काउंसिल ने कहा कि:

> "इसके अतिरिक्त, ब्रिटिश संसद को भारतीय संविधान अधिनियम लागू करते समय ब्रिटिश नॉर्थ अमेरिका अधिनियम एवं ऑस्ट्रेलियन राष्ट्रमंडल अधिनियम पर कार्य करने का लंबा अनुभव था और इस बात की जानकारी अवश्य रही होगी कि सैद्धांतिक रूप से यह संभव नहीं है कि

कुछ विधान मंडलों को प्रदत्त शक्तियां एक-दूसरे को अधिव्याप्त नहीं करेंगी।"

प्रिवी काउंसिल ने सर मॉरिस ग्वेयर, मुख्य न्यायाधिपति की कुछ टिप्पणियों को स्वीकार करते हुये कहा कि:

"तीन सूचियों को दो सूचियों में प्रतिस्थापित करके अथवा क्षेत्राधिकारिता के पदानुक्रम की व्यवस्था करके भी विषय-वस्तु के अधिव्याप्त होने से बचा नहीं जा सकता है। विषय तब भी अधिव्याप्त होंगे एवं जहां वे अधिव्याप्त होते हैं वहां यह प्रश्न अवश्य पूछा जाना चाहिए कि मूल रूप एवं सार में अधिनियम को लागू करने के क्या प्रभाव होंगे जिसके संबंध में शिकायत की गई है तथा प्रकृति एवं चरित्र के आधार पर यह किस सूची में पाया जायेगा। अगर यह सवाल नहीं पूछे जा सकते तो बहुत ही लाभकारी कानून जन्म के समय ही दब जायेगा और प्रांतीय कानून से जुड़े कई विषयों के संबंध में प्रभावी रूप से कार्य नहीं किया जा सकेगा।"

तीसरे प्रश्न के संबंध में चिंतन करते हुये प्रिवी काउंसिल ने टिप्पणी की कि:

> "बेशक यह एह महत्वपूर्ण मामला है, ना कि जैसा उनके न्यायाधिपति सोचते हैं, क्योंकि किसी अधिनियम की वैधानिकता निश्चित की जा सकती है, प्रतिकूलता के बिन्दुओं पर भेदभाव कर परन्तु, विवादित अधिनियम का मूल रूप एवं सार निर्धारित करने के उद्देश्य से इसके प्रावधान संघीय क्षेत्र में यह दर्शाते हुए इस हद तक आगे बढ़ सकते हैं कि इसकी मूल प्रकृति प्रांतीय मामलों से संबंधित नहीं है लेकिन सवाल यह नहीं है कि इसने अतिक्रमण कम किया है अथवा ज्यादा बल्कि कैसा अतिक्रमण किया गया है, क्या यह दर्शाता है कि विवादित अधिनियम मूल रूप एवं सार में धन उधार देना ना होकर प्रॉमिसरी नोट्स और बैंकिंग से संबद्ध है?"

उनके न्यायाधिपतियों ने आगे कहा है कि:

"क्या संघीय विधानमंडल की प्राथमिकता प्रांतीय विधायिका को ऐसे विषयों पर कार्य करने से रोकती है, जो संयोगवश उसकी सूची में किसी प्रविष्टि को प्रभावित कर सकती है अथवा प्रत्येक मामले में किसी अधिनियम के सार पर विचारण करता है, जिसका सहायक प्रभाव जो भी हो, इसे इसके वास्तविक चरित्र अनुसार उपयुक्त सूची में स्थान देती है?"

इस मामले में सूची । की किसी प्रविष्टि पर संघीय विधायिका के साथ कोई भी कथित विवाद आरोपित नहीं था एवं वे मौजूदा कानून के साथ संघर्ष के संबंध में विचार कर रहे थे।

ए.एस. कृष्णा बनाम मद्रास राज्य में कथित विवाद, एक ओर मद्रास निषेध अधिनियम, 1937 तथा दूसरी ओर भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 एवं दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 के मध्य था। इस न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि प्रश्नगत विवादित अधिनियम सूची ॥ की प्रविष्टि 31 के संबंध में कानून था और कहा कि:

"इस प्रकार से मद्रास निषेध अधिनियम अपनी संपूर्णता में प्रांतीय विधानमंडल की अनन्य क्षमता के भीतर एक कानून है एवं धारा 107(1) के तहत प्रतिकूता का प्रश्न नहीं उठता है"

न्यायालय ने स्वयं को इस प्रश्न पर संबोधित नहीं किया कि क्या यह सूची III की प्रविष्टियों 5 व 2 के संबंध में नहीं होकर सूची II की प्रविष्टि 31 के संबंध में एक कानून है, फिर भी क्या होगा यदि मौजूदा कानून अर्थात् साक्ष्य अधिनियम और आपराधिक प्रक्रिया संहिता वास्तव में प्रतिकूल थे। किसी भी तरह से, यह न्यायालय तब सूची I के तहत संसदीय कानून से संबंधित नहीं था और अनुच्छेद 254, जैसा कि प्रासंगिक समय पर जम्मू और कश्मीर राज्य पर लागू था, से भी संबंधित नहीं था।

हम उल्लेख कर सकते हैं कि इस न्यायालय ने उक्का कोल्हे बनाम मद्रास राज्य में अनुच्छेद 254(2) के तहत बॉम्बे निषेध अधिनियम, 1949 के प्रावधानों को, जहां तक वे दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुरूप हैं, बरकरार रखा था।

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कलकत्ता गैस कंपनी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य का उल्लेख किया, लेकिन हम यह देखने में असमर्थ हैं कि

यह अपीलार्थी के मामले में कैसे मदद करता है। ऐसी स्थिति में, न्यायालय द्वारा कुछ प्रविष्टियों का मिलान कर कहा गया कि: "सूचियों में प्रविष्टियां केवल कानूनी शीर्षक अथवा कानून के क्षेत्र हैं, वे उस क्षेत्र का सीमांकन करते हैं जिस पर उपयुक्त विधायी कार्य संचालित होता है। यह सुव्यवस्थित है कि प्रविष्टियों की भाषा को व्यापक आयाम दिया जाना चाहिए। लेकिन अलग-अलग सूची या एक ही सूची में कुछ प्रविष्टियां अधिव्याप्त हो सकती हैं और कभी-कभी एक-दूसरे के साथ सीधे संघर्ष में भी दिखाई दे सकती हैं। तब इस न्यायालय को कर्तव्य है कि वह प्रविष्टियों का मिलान कर उनके मध्य सामंजस्य लेकर आये।" लेकिन इस मामले में हम प्रविष्टियों के सामंजस्य के किसी भी प्रश्न से चिंतित नहीं हैं क्योंकि हमारे पास एक ओर सूची । में एक विशिष्ट प्रविष्टि है और दूसरी ओर एक अवशिष्ट सूची है।

अब यह देखना बाकी है कि क्या विवादित अधिनियम अखिल भारतीय सेवा (अनुशासन एवं अपील), नियम 1955 के प्रावधानों के प्रतिकूल है। पहले हमें अनुशासन और सेवा नियमों के प्रावधानों पर ध्यान देना चाहिए। नियम 3 कुछ दण्ड निर्धारित करता है, जो उचित एवं पर्याप्त कारणों के बाद सेवा के किसी सदस्य पर अधिरोपित किये जा सकते हैं। इन दण्डों में निंदा, वेतन वृद्धि या पदोन्नति में रोक; रैंक कम करने, सेवा से निष्कासन और सेवा से बर्खास्तगी आदि शामिल हैं। नियम 4 में कार्यवाही शुरू करने एवं दण्ड आरोपित करने का प्राधिकार वर्णित है।

सरकार, जिसके अधीन सदस्य उसके विरूद्ध कमीशन गठित करने समय सेवारत है और कोई चूक जो उसे किसी दण्ड के लिये उत्तरदायी बनाती है, स्वयं अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के लिये सक्षम है एवं सरकार नियम 3 में निर्दिष्ट सेवा मुक्ति, निष्कासन अथवा अनिवार्य सेवानिवृत्ति के दण्डों, जो आदेश केवल केन्द्र सरकार द्वारा जारी किया जा सकता है, के अतिरिक्त किसी भी दण्ड को अधिरोपित कर सकती है। नियम 5 दण्ड अधिरोपित करने की प्रक्रिया निर्धारित करता है। जिन आधारों पर कार्रवाई किया जाना प्रस्तावित है, उन्हें निश्चित आरोप अथवा आरोपों के रूप में संकलित कर एक लेख, जो प्रत्येक आरोपित अपराध एवं किसी भी अन्य परिस्थिति जिस पर मामले में आदेश पारित करते समय निर्धारण किया जाना है को उल्लिखित करता है, सेवा के जिस सदस्य पर आरोप लगाये गये हैं, को सूचित किया जायेगा। सेवा के एक सदस्य को अपने बचाव में लिखित जवाब प्रस्तुत करने के लिये उचित समय दिया जाता है। यदि वह कुछ कहना चाहे तो यह उसे इसके लिये सक्षम बनाता है। सेवा के सदस्य को आधिकारिक अभिलेखों तक पहुंच का अधिकार है। लिखित कथन प्राप्त होने के बाद, यदि वह दाखिल किया जाता है तो सरकार एक जांच बोर्ड अथवा एक जांच अधिकारी को आरोपों की जांच करने के लिये नियुक्त कर सकती है अथवा सरकार स्वयं आरोपों की जांच कर सकती है।

संक्षेप में जांच करने के तरीकों के बारे में विस्तृत नियम निर्धारित किये गये हैं। नियम 6 में संघ लोक सेवा आयोग के साथ परामर्श का प्रावधान है। नियम 7 अनुशासनात्मक कार्रवाई के दौरान निलंबन से संबंधित है। नियम 8 निलंबन के दौरान निर्वाह भत्ते से संबंधित है। नियम 9 वेतन भुगतान और भत्तों एवं बहाली पर सेवा के उपचार से संबंधित है। कुछ आदेशों के विरूद्ध अपील करने का अधिकार दिया गया है एवं नियम 20 में राष्ट्रपति के स्मरण हेतु ज्ञापन प्रस्तुत करने का प्रावधान है।

यह नियम, नियम 3 में दण्ड आरोपित करने के प्रावधान के संबंध में एक पूर्ण संहिता हैं।

कमीशन एक्ट के संविधान में, जैसा कि कमीशन एक्ट की उप धारा 3 व 4 में अखिल भारतीय सेवाओं को सम्मिलित करते हुये सभी सरकारी कार्मिकों के विरूद्ध एक या एक से अधिक कमीशन, जो भ्रष्टाचार निरोधी कमीशन के रूप में जाने जायेंगे, के गठन एवं भ्रष्टाचार एवं दुराचार के आरोपों पर कार्रवाई का प्रावधान है। कमीशन को आरोपों पर जांच हेतु एक जांच एजेंसी प्रदान की जाती है। संशोधन के पूर्व, धारा 10 में, कमीशन द्वारा *स्वतः संज्ञान* पर अथवा कुछ अधिकारियों द्वारा लिखित शिकायत पर जांच करने का प्रावधान था। धारा 11 के तहत प्रत्येक व्यक्ति को किसी सरकारी कर्मचारी के विरूद्ध आयोग में लिखित शिकायत करने का अधिकार है। धारा 12 में शिकायत की प्रारंभिक जांच का प्रावधान है। आयोग या तो

आरोपों को खारिज कर सकता है अथवा आगे कार्यवाही करने के लिये पर्याप्त आधार मौजूद होने पर आयोग अलग-अलग आरोपों की व्याख्या करते हुये लेख तैयार करवायेगा एवं आरोपी को उसके सामने पेश होने के लिये बुलायेगा। धारा 12 की उप धारा (5) के तहत 1969 में संशोधन के पूर्व, सरकारी कर्मचारी को आयोग द्वारा उसके विरूद्ध आरोप तैयार किये जाने के बाद निलंबित कर दिया जाता था। धारा 13 पूछताछ के वक्त की प्रक्रिया के लिये प्रावधान करती है। धारा 17, आयोग से आरोप के विभिन्न अनुच्छेदों पर अपने निष्कर्षों को दर्ज करने एवं अपनी अनुशंसा सदर-ए-रियासत को पेश करने की अपेक्षा करती है। यदि अभियुक्त के विरूद्ध कोई आरोप प्रमाणित होना पाया जाता है तो आयोग को इस धारा में उल्लिखित दण्ड की सिफारिश करनी होगी। धारा 17 की उप धारा (2) के तहत कमीशन, उप धारा (1) में निर्दिष्ट दण्ड के अतिरिक्त, अभियुक्त को हमेशा के लिये या किसी भी कम निर्दिष्ट समय के लिये अक्षम या किसी भी सार्वजनिक पद पर नियुक्ति के लिये सिफारिश कर सकता है। उप धारा (3) में किसी उपयुक्त मामले में कमीशन अभियुक्त के विरूद्ध न्यायालय में किसी भी अपराध के लिये मुकदमा चलाने की सिफारिश कर सकता है। उप धारा (7) विशेष रूप से अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों से संबंधित है और यह प्रावधान करती है कि उनके मामले में सदर-ए-रियासत, उपयुक्त प्राधिकारी को सजा देने की सिफारिश कर सकता है। और भी कई अन्य

आनुषंगिक प्रावधान हैं, जिन्हें हमें विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है।

दो वैधानिक कानूनों यथा अखिल भारतीय सेवा (अनुशासन और अपील) नियम, 1955 एवं जम्मू और कश्मीर सरकारी कर्मचारी भ्रष्टाचार की रोकथाम (कमीशन) एक्ट, 1962 के प्रावधानों के अवलोकन से इस निष्कर्ष को अनदेखा करना असंभव है कि यह दोनों कानून एक साथ नहीं चल सकते हैं। विवादित अधिनियम में अतिरिक्त दण्डों हेतु प्रावधान दिये गये हैं, जो अनुशासन एवं अपील नियमों में नहीं दिये गये हैं। साथ ही इसमें निलंबन एवं दण्ड देने का भी प्रावधान है। हमें ऐसा लगता है कि जहां तक कमीशन एक्ट अनुशासनात्मक दण्ड के रूप में सज़ा देने से संबंधित है, यह अनुशासन एवं अपील नियमों के प्रतिकूल है। संसद द्वारा इस विषय पर पकड़ करते हुये यह स्पष्ट संकेत दिया गया कि अखिल भारतीय सेवा के सदस्यों के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही सिर्फ अखिल भारतीय सेवा (अनुशासन और अपील) नियमों के तहत ही की जा सकती है। जहां तक कमीशन एक्ट का संबंध अभियोजन प्रारम्भ करने के उद्देश्यों हेतु आवश्यक प्रारंभिक जांच से है, यह जम्मू और कश्मीर राज्य की विधिक क्षमता के दायरे में होनी चाहिए तथा अनुशासन एवं अपील नियमों के प्रतिकूल नहीं होनी चाहिए। परन्तु, चूंकि संभावित आपराधिक अभियोजन की जांच संबंधी प्रावधान, अनुशासनात्मक दण्ड देने संबंधी प्रावधानों से अटूट रूप से जुड़े

हुये हैं, इसलिये पूरे अधिनियम को इस प्रकार से पढ़ा जाना चाहिए कि अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों को इसके दायरे से बाहर रखा जा सके

तदनुसार हम भी यह अभिनिर्धारित करते हैं कि कमीशन एक्ट के प्रावधान अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों पर लागू नहीं होते हैं। तदनुसार अपील खारिज की जाती है। चूंकि प्रत्यर्थी का प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था, लागत के बारे में कोई आदेश नहीं किया जायेगा। हम न्यायमित्र के रूप में हमारी सहायता करने के लिये श्री जी.एल. सांघी को धन्यवाद करते हैं।

वी.पी.एस.

अपील खारिज की गई।

(यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी **श्री इन्द्र प्रकाश सैन** (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।)